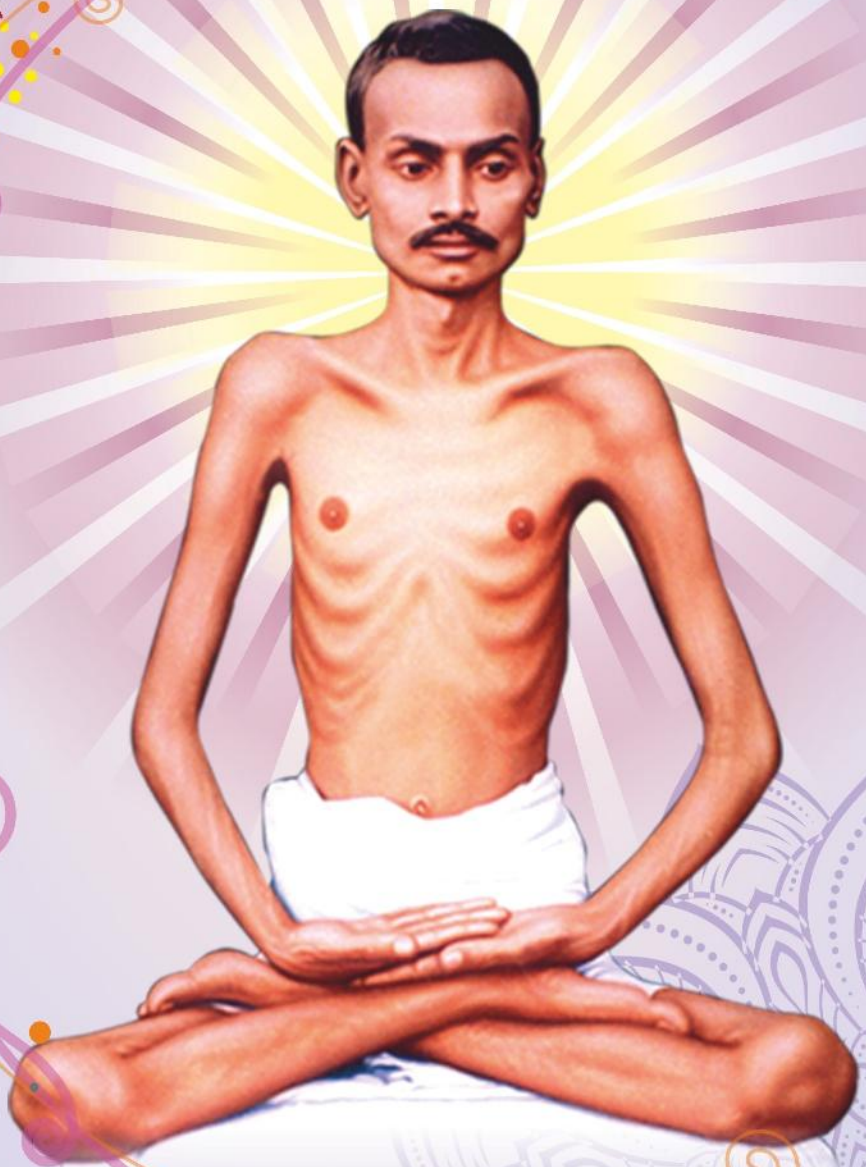
श्रीमद्
राजचन्द्र
जन्म जयंती
विशेषांक

वार्षिक सदस्यता शुल्क - रु. २५/-

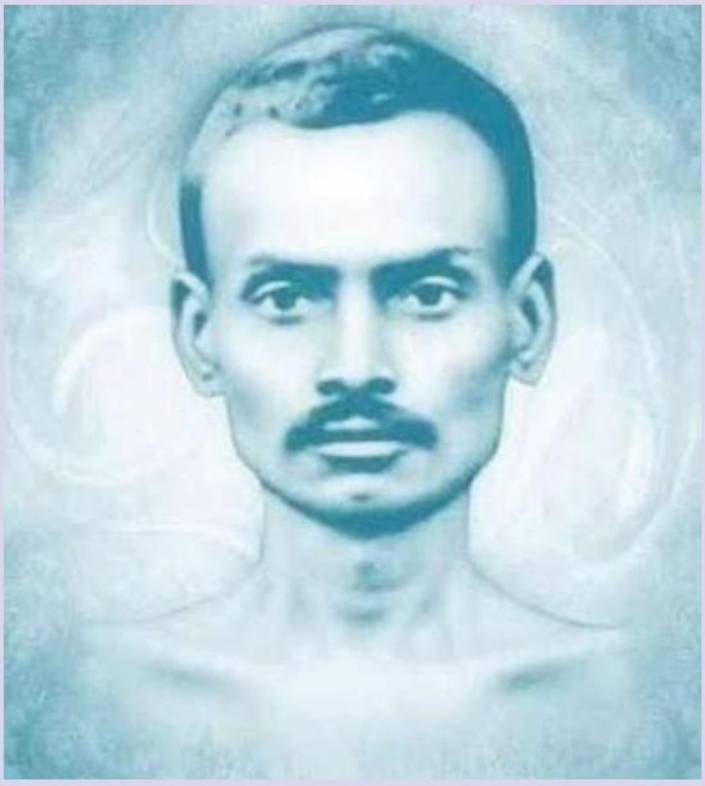
November-2026

स्वानुभूतिप्रकाश



प्रकाशक :
श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट
भावनगर - ३६४ ००१.

परम कृपालुदेव श्रीमद् राजचंद्रजीकी जन्मजयंती (कार्तिक पूर्णिमा)के मंगल अवसर पर उनके चरणोंमें कोटि कोटि वंदन!!!



'श्रीमद्जी'ने अपनी भाषामें यह बात लिखी हैं कि 'सारा जगत सोनेका हो जाये तो भी हमारे लिये तिनकेके समान है।' क्या लिखा? सारा जगत सोनेका हो जाये तो भी हमारे लिये तिनके जितना मूल्य है। हमें इसकी कोई कीमत नहीं है। कौन-कौनसी चीज़की कीमत क्या की? कि एकसाथ सारे जगतकी गठरी बाँधकर उसे फ़ेक दिया कि डालो इसे गड्ढेमें, इसकी कोई आवश्यकता नहीं है, इसकी कोई कीमत हमें नहीं है। एकावतारी पुरुष थे न? एकावतारी थे!! इस कालमें तो एक न्यायसे चरमसीमा तकका कार्य कर लिया। यहाँसे सीधी तो मुक्ति है नहीं, चाहे मुनिपदमें आया हो चाहे गृहस्थ अवस्थामें हो परंतु एक भव तो शेष बचा हो वही जीव यहाँ आते हैं। जो चरमशरीरी हो वे तो यहाँ आते नहीं। यहाँ जो कार्यसिद्धि हुई उतना कार्य पहले नहीं हुआ था उतना यहाँपर कार्य संपन्न हुआ। मिथ्यात्व सहित आये हैं। चौबीस सालमें १९४७में समकित शुद्ध प्रकट हुआ। चौबीसमें वर्षमें प्रारम्भ हुआ और देहान्त हो इसके पहले अवभासन हो गया कि अब एक देह शेष धारण करना है, इससे ज्यादा नहीं – इतना ज्ञान निर्मल हुआ है। इतनी साधनामें बहुत गहरे..गहरे.. गहरे चले गये।

– पूज्य भाईश्री शशीभाई

(प्रवचनांश...'बहिनश्रीके वचनामृत' बोल क्र.-२०४, दि.१८-१०-१९८७, प्रवचन क्र.-१६१, 'अध्यात्म सुधा' (गुजराती) भाग-६, पन्ना नं – २४०,२४१)

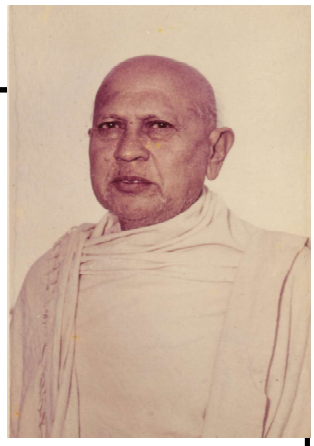
स्वानुभूतिप्रकाश

वीर संवत्-२५५३, अंक-३४७, वर्ष-२८, नवम्बर-२०२६

छाशीया गाँवमें वीर सं. २४७५,फाल्गुन वदि ६ के दिन 'श्रीमद् राजचंद्र' वचनामृतमेंसे पत्रांक-१७२ पर पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन



ज्ञानी को क्या संमत है?



पत्रांश - १७२

अनंतकालसे स्वयंको स्वविषयक ही भ्रांति रह गयी है; यह एक अवाच्य और अद्भुत विचारका विषय है। जहाँ मतिकी गति नहीं, वहाँ वचनकी गति कहाँसे हो?

निरंतर उदासीनताके क्रमका सेवन करना; सत्पुरुषकी भक्तिमें लीन होना; सत्पुरुषोंके चरित्रोंका स्मरण करना; सत्पुरुषोंके लक्षणका चिंतन करना; सत्पुरुषोंकी मुखाकृतिका हृदयसे अवलोकन करना; उनके मन, वचन और कायाकी प्रत्येक चेष्टाके अद्भुत रहस्योंका वारंवार निदिध्यासन करना; और उनका मान्य किया हुआ सभी मान्य करना।

यह ज्ञानियों द्वारा हृदयमें स्थापित, निर्वाणके लिये मान्य रखने योग्य, श्रद्धा करने योग्य, वारंवार चिंतन करने योग्य, प्रति क्षण और प्रति समय उसमें लीन होने योग्य परम रहस्य है। और यही सर्व शास्त्रोंका, सर्व संतोंके हृदयका और ईश्वरके घरका मर्म पानेका महामार्ग है। और इन सबका कारण किसी विद्यमान सत्पुरुषकी प्राप्ति और उसके प्रति अविचल श्रद्धा है।

अधिक क्या लिखना? आज, चाहे तो कल, चाहे तो लाख वर्षमें और चाहे तो उसके बादमें या उससे पहले, यही सूझनेपर, यही प्राप्त होनेपर छुटकारा है। सर्व प्रदेशोंमें मुझे तो यही मान्य है।

श्रीमद् राजचंद्रके, इस एक पत्र (पत्रांक-१७२) का स्वाध्याय चलता है। इसमें वे लिखते हैं कि ज्ञानियों का सम्मत किया हुआ सर्व सम्मत करना। ज्ञानियों को क्या सम्मत है? आत्मस्वभावमें अभेददृष्टि ही सर्व ज्ञानियों को सम्मत है। इसके अलावा कोई राग से धर्म हो या शरीर की क्रिया आत्मा करे - यह बात किसी भी ज्ञानी को सम्मत नहीं है।

'अनंतकाल से स्वयंको स्वविषयक ही भ्रांति रह गयी है।' **श्रीमद् के २३ वें वर्षका यह पत्र है।**

आत्मा अनंतकालसे है, इस शरीरका सम्बन्ध नया होता है, पर आत्मा नया (उत्पन्न) नहीं होता है। आत्मा स्वयं कौन है? इसकी जीवको अनंतकालसे खबर नहीं है। मैं कौन हूँ? और मेरा स्वरूप कैसा है? इस विषयमें ही भ्रांति रह गई है। मेरा सुख मानों जैसे बाहरमें हो! ऐसा मानता है, यानी कि स्वयंके विषयमें ही भ्रांति है। देव-गुरु-शास्त्र के विषयमें भ्रांति रह गई है – ऐसा नहीं कहा। क्योंकि सच्चे देव-गुरु-शास्त्रको तो माना, परन्तु स्वयंके आत्माके विषयमें भ्रांति को कभी टाला नहीं। परके विषयमें भ्रांति रह गयी है, ऐसा नहीं कहा परन्तु स्वयं कौन(है) इस विषयमें भ्रांति रह गई है। आत्माको भूल कर पर से लाभ मान रहा है अर्थात् उपादानस्वभावमें भ्रांति रह गई है, पर निमित्तमें भूल रह गई है – ऐसा नहीं है। दूसरी तरहसे कहें तो, व्यवहारके सम्बन्धमें भूल तो टाली, पर आत्माका स्वभाव कैसा है वह जाना नहीं; अर्थात् निश्चय सम्बन्धी भूल कभी मिटाई नहीं। देव-गुरु-शास्त्रकी कृपा हो जाये तो मेरे आत्माका कल्याण हो जाये – ऐसा मानना ही स्वयंके स्वरूप (के विषय) में भ्रांति है। पुण्यको आत्माका स्वरूप माने, तो वह भी आत्माके विषयमें भ्रांति है। जीवने अनंतकालमें बाकी सब कुछ किया परन्तु आत्माका स्वभाव क्या है, इस विषयकी भ्रांतिको कभी टाला नहीं। अपने विषयमें भ्रांति रह गई है। स्वयं यानी कौन? विकारवाला स्वयंको माना, वह भी भ्रांति है। आत्मा क्षणिक विकार जितना नहीं, विकाररहित उसका स्वभाव है। इस स्वभावके (विषयमें) भ्रांति रह गई है। जीवने शुभभाव अनंतबार किया है, पर भ्रांतिरहित होकर शुद्धआत्माको कभी नहीं जाना।

'यह एक अवाच्य और अद्‌भुत विचारनेका विषय है।' वाणीसे नहीं कहा जा सके, ऐसा अद्‌भुत विचारनेका यह विषय है। यहाँ आत्मस्वभावके विचारकी अपूर्वता बतलाते हैं। ऐसा क्या बाकी रह गया कि अनंत अनंतकाल बीत गया फिर भी भ्रांति टली नहीं। अनंतकालमें त्याग, व्रत, वगैरह किया, परन्तु आत्मस्वभावकी विचारना करनी बाकी रह गई है। अपने विषयमें क्या भ्रांति रह गई? यह एक अद्‌भुत विचारनेका विषय है। बाकी सभी विचारोंमें बुद्धि लगायी है, परन्तु आत्माकी यथार्थ विचारना कभी नहीं की। पहले आत्मस्वभावकी बात करके बादमें इसके निमित्तकी भी बात करेंगे। अनंतकालकी भ्रांति कैसे टले – इसका उपाय बताएँगे।

'जहाँ मतिकी गति नहीं, वहाँ वचनकी गति कहाँसे हो?' यहाँ मति यानी पर तरफ झुकता हुआ ज्ञान। पर तरफके विकल्प द्वारा भी जिस आत्मा तक पहुँचा नहीं जाता, ऐसे आत्माको वाणीसे कैसे कहा जा सके? मति यानी पर तरफके ज्ञानका उघाड, अथवा पर तरफ झुकाव वाला ज्ञान – ऐसा यहाँ अर्थ समझना। सम्यक् मतिज्ञान द्वारा तो आत्मा जाननेमें आता है, लेकिन पर तरफ झुके हुए ज्ञानके उघाड द्वारा आत्मा जाननेमें नहीं आता।

ऐसे पहले तो उपादानस्वभावकी बात की, अब अनंतकालसे रही भ्रांति टालनेके लिए और अंतरस्वभावमें आने के लिए क्या करना सो कहते हैं।

'निरंतर उदासीनताके क्रमका सेवन करना;' – निरंतर कहा है। जैसे बादाममें से तेल निकालना

हो तो उसे लगातार घिसना पड़े; थोड़ा घिसे फिर दूसरे कामोंमें अटक जाये, फिर थोड़ा घिसे, – ऐसे रुक-रुक कर घिसे तो तेल नहीं निकलता है। लेकिन कोई अंतराय बिना घिसे तो तेल निकले। वैसे यहाँ निरंतर उदासीनता के क्रमका सेवन करने को कहा है। पर तरफकी रुचि कुछ घटे तब तो अंतर विचारके तरफ लगे ना? यह बात नास्तिसे की है। परके प्रति वैराग्यदशा ला कर अंतरके विचारमें निरंतर रहना चाहिए। यहाँ निरंतर परके प्रति उदासीनताका सेवन करनेको कहा है। तो क्या खाना-पीना कुछ नहीं करना? ऐसा कोई पूछे तो कहते हैं कि जैसे कोई व्यापारका लालची सोता हो या खाता हो तो भी साथमें उसे व्यापारकी लालच तो पडी ही है। वैसे ही धर्मकी रुचिवालेको निद्रामें भी परके प्रतिकी उदासीनताका भाव हटता नहीं; धर्मकी रुचिवाला उदासीनताके क्रममें अंतराय पड़ने देता नहीं। खाना-पीना या व्यापार वगैरहका राग भले वर्तता हो लेकिन अंतरकी रुचिमें उसके प्रति उदासीनता एक क्षण भी हटती नहीं।

अब भ्रांति टालनेके निमित्तकी पहचान कराते हैं कि, *'सत्पुरुषकी भक्ति प्रत्ये लीन होना।'* पहले सत्पुरुष कौन – इसे पहचानना चाहिए। पहचाननेकी जिम्मेदारी स्वयं की है। सत्पुरुष किसे कहना, यह जाननेका स्वयंका भाव है। दो पैसेका मिट्टीका तवा लेने जाता है तो भी टकोर मार कर जाँच करता है। तो अनंतकालकी भ्रांति टालकर आत्माका कल्याण करने के लिए सत्पुरुषकी परीक्षा करके पहचानना चाहिए । सत् यानी आत्मस्वभाव, इसकी जिसे पहचान हुई है वे सत्पुरुष हैं। संसारके प्रति निरंतर उदास होना और सत्पुरुषकी भक्तिमें लीन होना – ऐसे दो बातें की हैं।

और विशेष कहते हैं : *'सत्पुरुषोंके चरित्रका स्मरण करना;'* पहले जिसका ज्ञान किया हो उसका स्मरण कर सकते हैं। सत्पुरुषका चरित्र किसे कहना? इसके ज्ञान बिना उनका स्मरण किस प्रकारसे हो सके? सत्पुरुषका चरित्र कहाँ रहता होगा? कोई बाहरकी क्रियामें या शुभाशुभ रागमें सत्पुरुषोंका चरित्र नहीं है। बाहरमें कोई परिवर्तन न दिखे परन्तु धर्मीके अंतरकी दशामें रुचिकी दिशा स्वभावके तरफ झुक गई है। जैसे छोटेसे हीरे की कीमत लाखोंमें होती है, वह जौहरी ही जान सकता है। वैसे ही आत्माका चरित्र अन्तरदृष्टिसे ही पहचाना जा सकता है। धर्मी आत्माका चारित्र क्या? वह शरीरकी दशामें या वस्त्र में नहीं है। आहार-शुद्धि या वस्त्रके त्यागमें भी चरित्र नहीं– यह सब तो अज्ञानीको भी होता है। सत्पुरुषके अंतरमें क्या फरक पड़ा है वह जाने बिना उनके चरित्रका ज्ञान नहीं होता। सत्पुरुषके अंतरका चरित्र क्या? कोई गाँवमें रहते थे और जवाहरात (आभूषणों) का व्यापार करते थे, जिज्ञासुओं को पत्र लिखते थे या उपदेश देते थे वे तो – इसमें क्या सत्पुरुषका चरित्र है? वह सब बाह्य वस्तु है इसमें सत्पुरुषका चरित्र नहीं। परन्तु अंतरके स्वभावको जानकर वहाँ स्थिर हुए हैं और रागादि भावोंकी रुचि टल गई है, यही सत्पुरुषों का चरित्र है। उनको पहचाने तो उनका सच्चा स्मरण हो।

और कहते हैं कि *'सत्पुरुषोंके लक्षणका चिंतन करना;'* ऐसी भाषा थी और ऐसा शरीर था –

ऐसे शरीरके लक्षणसे सत्पुरुषकी पहचान नहीं होती। अंतरस्वभावकी श्रद्धा, ज्ञान और रमणता, वह सत्पुरुषका लक्षण है। बाहरमें त्याग होना या शुभराग होना ये सत्पुरुषके सच्चे लक्षण नहीं हैं। शरीर दिखता है वह देव-गुरु नहीं है, सो तो जड़ है, देव और गुरु तो आत्मा है और अंतरमें श्रद्धा-ज्ञान-चरित्र स्वरूप है वही उनका लक्षण है। इन लक्षण द्वारा सत्पुरुषको पहचाने तो स्वयं वैसा हो जाए।

लक्षण उसे कहते हैं कि, जिससे द्वारा लक्ष्यको पहचाना जाए। सत्पुरुषमें ऐसा क्या लक्षण है जो दूसरेमें न हो और उनमें ही हो? सत्पुरुषके अंतरके श्रद्धा ज्ञान ही उनके लक्षण हैं। रागादि होना वह उनका लक्षण नहीं- ऐसे लक्षण द्वारा सत्पुरुषको पहचान कर उनका चिंतवन करना।

इस प्रकार अंतरकी बात करके अब बाहरकी बात करते हैं : *'सत्पुरुषोंकी मुखाकृतिका हृदयसे अवलोकन करना। उनके मन, वचन और कायाकी प्रत्येक चेष्टाके अद्‌भुत रहस्योंका (वचनका)वारंवार निदिध्यासन करना;'* शरीर-मन-वाणी की क्रिया तो जड है। परन्तु उसके पीछे अनाकुल स्वभावका श्रद्धा-ज्ञान है - (वह) उनका अद्‌भुत रहस्य है। मन-वचन-कायाकी जो प्रवृत्ति होती है, उसका कर्तापना ज्ञानीको उड़ गया है, उनको उसमें कभी सुखबुद्धि होती नहीं और भेदज्ञान कभी छूटता नहीं है - ऐसा ज्ञानीका अद्‌भुत रहस्य है जिसे बारम्बार विचारना योग्य है। सत्पुरुषके मुखाकृतिका हृदयसे अवलोकन और बारम्बार उनके समागमकी भावनामें स्वयंको सत् समझनेकी रुचि है।

अब कहते हैं कि, *'उनका सम्मत किया हुआ सर्व सम्मत करना।'* ज्ञानियोंने क्या सम्मत किया है? आत्माके स्वाश्रय सिवाय तीन कालमें धर्म नहीं है, इसलिए स्वाश्रय भाव ही ज्ञानीको सम्मत है। देव-गुरु-शास्त्रका आश्रय करना ज्ञानीको सम्मत नहीं है। आत्माका राग रहित ज्ञाता स्वभाव है - उसकी रुचि, उसकी श्रद्धा, उसका ज्ञान और उसका आश्रय करना ही ज्ञानीको सम्मत है। इस प्रकारसे पहचान कर उनका सम्मत किया हुआ सर्व सम्मत करना। शुभ या अशुभ कोई भी पराश्रित भावसे आत्माका धर्म हो - ऐसी मान्यता ज्ञानियोंको सम्मत नहीं। आत्माको जिस भावसे नुकसान हो, ऐसा एक भी भाव ज्ञानीको सम्मत नहीं। ज्ञानीको आत्माका विकाररहित स्वभाव ही सम्मत है।

एक ज्ञानी एक मार्ग बताएँ और दूसरे ज्ञानी दूसरा मार्ग बताएँ - ऐसा कभी बनता नहीं। सभी सत्पुरुषोंका एक ही मार्ग है। आत्मस्वभावको पहचान कर उसका आश्रय करना - यही मुक्तिका पंथ है और यही मार्ग सभी ज्ञानियोंको सम्मत है। इस प्रकारसे पहचानकर ज्ञानियोंका सम्मत किया हुआ सर्व सम्मत करना। ज्ञानीके पास श्रवण करके स्वयंको जितना जँचे उतना माने और दूसरी बात न रुचे, तो उस जीवने ज्ञानियोंका कहा हुआ सर्व सम्मत नहीं किया; परन्तु स्वयंके स्वच्छंदका पोषण किया है। देव-गुरु-शास्त्रके आश्रयसे जो पुण्य भाव होता है उसका आश्रय करनेका भी धर्मीको मान्य नहीं, परन्तु उसका आश्रय छोड़ना मान्य है। ज्ञानियोंका मान्य किया सर्व मान्य करना; इसमें अगर कहीं भी अपनी कल्पनासे स्वच्छंद किया तो उसने ज्ञानीको पहचाना नहीं और उनका कहा हुआ माना नहीं। आज तक जीवने अपनी भ्रांतिसे ही ज्ञानीके विषयमें अपनी दृष्टिसे कल्पनाकी है। यदि ज्ञानीको

ज्ञानीके रूपमें पहचाने तो उसे भेदज्ञान और मुक्ति हुए बिना रहे नहीं। ज्ञानीकी पहचान करनेमें परकी महत्ता नहीं परन्तु अपने आत्माकी ही महत्ता है। प्रथम तो अनंत कालसे आत्माकी भ्रांति रह गई है – ऐसा पहचाने और फिर उपर कहे अनुसार पात्र होकर सत्पुरुषको पहचाने तो अवश्य आत्माकी भ्रांति टल जाए।

ज्ञानी ऐसा नहीं कहते कि, तू मेरा आश्रय करके रुक जा। परन्तु तुम अपने आत्माके सिद्ध जैसे परिपूर्ण स्वभावको पहचान कर उसका आश्रय कर – ऐसा ज्ञानीके हृदयका रहस्य है। सभी धर्मात्माओंने यही सम्मत किया है और यही सम्मत करने योग्य है – प्रसन्नतासे मान्य करने योग्य है।

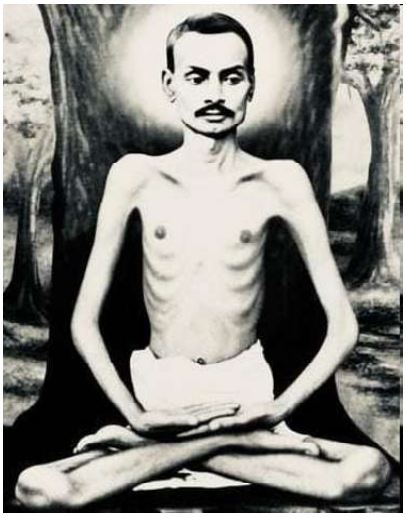
'यह ज्ञानियों द्वारा हृदयमें स्थापित, निर्वाणके लिए मान्य रखने योग्य, श्रद्धा करने योग्य, वारंवार चिंतन करने योग्य, प्रति क्षण और प्रति समय उसमें लीन होने योग्य परम रहस्य है और यही सर्व शास्त्रों का, सर्व संतों के हृदयका और ईश्वर के घरका मर्म पाने का महामार्ग है।' देखो तो सही, कितनी दृढ़तापूर्वक बात की है। धर्मी जीवोंने जो मान्य किया, वह मान्य करना ही परम रहस्य है। धर्मी जीवोंने क्या मान्य किया? किसका आचरण किया? और क्या छोड़ा? इसे पहचाने बिना स्वयं उसकी श्रद्धा किस प्रकार करे? और चिंतवन भी किस प्रकार से करे?

ज्ञानियोंको सही प्रकारसे पहचान कर उन्होंने जिस प्रकारसे आत्माके वीतराग स्वभावको मान्य किया, उसका आश्रय करना; वह सर्व शास्त्रों और सर्व संतोंके हृदयके मर्मको पानेका यही एक मार्ग है। निर्वाणके हेतु यानी आत्माकी मुक्ति हेतु मान्य करने योग्य यही महामार्ग है। और ईश्वरके घरका यानी सर्वज्ञ भगवानके मार्गका अथवा आत्माके स्वभावका मर्म पानेका यही महामार्ग है। आत्माका परमात्म पद प्रगट हो वही महामार्ग है।

अब निमित्तकी बात करते हैं: *'और इन सबका कारण किसी विद्यमान सत्पुरुषकी प्राप्ति और उसके प्रति अविचल श्रद्धा है। अधिक क्या लिखना?'* तीनों कालमें यही एक मार्ग है, ऐसा ज़ोर देकर कहते हैं कि, *'आज, चाहे तो उसके बाद या उससे पहले, यही सूझनेपर, यही प्राप्त होने पर छुटकारा है।'* भाई, तुम्हें तुम्हारे स्वरूपकी ही भ्रांति है, वह भ्रांति टाले बिना छुटकारा नहीं है। और उस भ्रांतिको छेदनेके लिए ज्ञानियोंने जो सम्मत किया उसे ही सम्मत करना, यही मार्ग है। यह मार्ग सूझने पर ही सर्व संतोंके हृदयको समझा जा सकता है और अंतमें, विद्यमान सत्पुरुषकी प्राप्ति होनेका कहा है। पूर्वमें हो गए सत्पुरुष नहीं परन्तु स्वयंको साक्षात् विद्यमान सत्पुरुषकी प्राप्ति हो और उनके वचनोंका सीधा श्रवण कर उनके प्रति अविचल श्रद्धा जगे। इसमें समझे बिना सत्पुरुषको माननेकी बात नहीं है, परन्तु सत्पुरुषको पहचानकर, वे कहते हैं कि ऐसे निरालम्बी स्वयंके आत्मस्वभावकी पहचान करे तो संतोंका माना हुआ मान्य किया कहलाए और वही निर्वाणका मार्ग है।

आखिरमें स्वयं अपनेको शामिल करके कहते हैं कि, *'सर्व प्रदेशोंमें मुझे तो यही मान्य है।'* आत्मा के असंख्य प्रदेशोंमें मुझे तो यही मान्य है। ('आत्मधर्म' – ८० में से साभार उद्धृत)

परम कृपालुदेवकी जन्मजयंती पर पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा गुण संकीर्तन





यदि आत्मार्थीपना क्या है? यह समझना हो तो इस ग्रंथ ('श्रीमद् राजचंद्र') का स्वाध्याय अनिवार्य है। आत्मार्थिता क्या है बहुतसे पहलू द्वारा उन्होंने आत्मार्थ प्रकाशित किया है। काफ़ी पहलुओंसे। सो तो 'गुरुदेवश्री' कहते, 'गुरुदेवश्री', 'बहिनश्री' दोनों कहते थे जब कोई पूछता कि हमें शुरूआतमें क्या पढ़ना? तब कहते थे 'श्रीमद्' पढ़िये – ऐसा ही कहते थे। क्योंकि उन्हें यह पता है कि कोई भी जीव यदि आत्मार्थी होकर सिद्धांत शास्त्र पढ़ेगा तब तो कुछ फायदा है। यूँ ही सिद्धांत शास्त्र उठाया और पढ़ने लगा तो अवश्य गाड़ी दूसरी पटरी पर चढ़ जायेगी। अतः ऐसा अभिप्राय ही व्यक्त करते थे। प्रथम 'श्रीमद्' पढ़िये – ऐसा कहते थे। स्वयं दोनों महात्माओंने, दोनों ज्ञानियोंने भी अच्छी तरह अध्ययन किया है। (मुमुक्षुओंने) 'कृपालुदेव'के वचन संबंधित प्रश्न पूछे हैं तब उन्होंने कितनी अनुमोदना की है!! हमारा 'स्वानुभूतिदर्शन' पर स्वाध्याय चलता है इसमें कितनी बार 'श्रीमद्' ऐसा कहते हैं, 'श्रीमद्' ऐसा कहते हैं तो इसके पीछे क्या आशय है तब कितनी अनुमोदना सहित उत्तर दिये हैं!! इतना ही नहीं 'सुख धाम अनंत सुसंत चही...' यह उनके 'बहिनश्री'के नित्यस्मरणका विषय था। सोनेसे पहले यह इनके स्मरणका विषय था। स्मरणका मतलब सिर्फ रहना नहीं, उसवक्त वे अपनी आत्माको आविर्भूत करते हैं। सुखधाम, अनंत सुखधाम यानि भीतरमें अनंत सुखधामको देखते हैं। 'सुख धाम अनंत...' पदमें अनंत शब्द भले ही पीछे है परंतु मूलमें तो अनंतसुखका धाम स्वयं ही है वैसे अपने आपको देखते हैं। केवल विकल्प करते हैं या स्मरण करते हैं ऐसा नहीं। ऐसा प्रकार होता है। जो कि उनका रोज़ाना routine work है और आखरी दिन भी ऐसा ही हुआ है न! रातमें करीब दस, सवा दस बजे देह त्याग किया है उसवक्त दो-चार बहिनें उनके पास होती थीं तब उनकी भांजी जो थी उन्होंने कहा कि चलो हमलोग अनंत सुखधाम, सुखधाम अनंत ले लेते (हैं) वे लोग कभी समूहमें भी लेते थे। तब बहिनश्री बोले, आप लोग अपना सुखधाम कर लीजिये मैं भीतरमें अपना सुखधाम करती हूँ, ऐसा कह

दिया। आप अपना सुखधाम कीजिये मैं अपना सुखधाम अंदरमें करती हूँ आज। अंतिम समय जो था न! अतः बाहरमें उतना विकल्प नहीं जाता तो कह दिया कि आप लोग अपना सुखधाम कीजिये मैं अपना सुखधाम भीतरमें कर लेती हूँ। आखरी वचन इतने निकले हैं। इसतरह 'कृपालुदेव'के वचन हैं, सो तो नामसे 'कृपालुदेव'के वचन हैं बाकी तो आत्मस्वरूपके वचन हैं किसी भी आत्माके लिये।

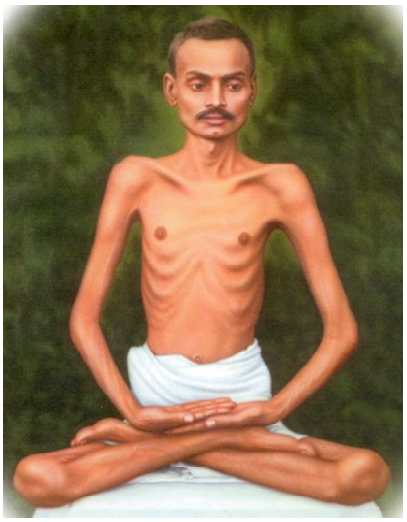
'सोगानीजी' जैसे पुरुषार्थी आत्माने भी आखरी दिन 'कृपालुदेव'का ग्रंथ हाथमें लिया है। द्रव्यदृष्टिवालोंको यह पता नहीं होता। 'द्रव्यदृष्टिप्रकाश' पढ़नेवालोंको, पढ़नेवाले मतलब तनिक रागसे हिमायत करते हैं न! कुछ प्रकारके रागसे, निश्चयके कथनोंका राग होता है न वैसे परंतु ऐसे धर्मात्माने भी आखरी दिन मृत्युके समय कृपालुदेवका ग्रंथ हाथमें लिया है!!

(प्रवचनांश... 'श्रीमद् राजचंद्र' पत्रांक-४३१, दि. २९-११-१९९८, प्रवचन क्र.-७७५)

*

मुमुक्षु :- 'गुरुदेवश्री'का एक भी प्रवचन ऐसा नहीं जिसमें गुरुदेवने कृपालुदेवकी महिमा न की हो, - एसा एक भी प्रवचन नहीं होगा।

पूज्य भाईश्री :- सही बात है। एकदम शुरू-शुरूमें पूज्य गुरुदेवश्रीने 'श्रीमद्जी'के पत्रोंका बहुत गहन अभ्यास किया था।



मुमुक्षु :- 'श्रीमद् राजचंद्र'का स्वाध्याय करते थें।

पूज्य भाईश्री :- हाँ, स्वाध्याय करते थे। जिस पुस्तकका स्वाध्याय करते थे उस प्रतमें देखा जाये तो कितनी-कितनी जगह पर underline किया है जो आज भी मौजूद है। कितने ही पत्रोंमें बहुतसी जगह underline किया हुआ है, जैसे कि यहाँ पर यह बात इतनी महत्वपूर्ण है। इस पत्रमें इतनी-इतनी महत्वपूर्ण सिद्धांतिक बातें आयी हैं। वास्तवमें देखे तो वह 'श्रीमद्जी'ने ग्रंथके रूपमें बनायी हुई कृति नहीं है। वह तो व्यक्तिगत लिखे गये पत्र हैं इसमें भी इतना तत्व प्रकाशित हुआ है। व्यक्तिगत पत्र व्यवहारमें इतना तत्व प्रकाशित हुआ है तो देखा जाये तो इनके ज्ञानमें, हृदयमें कितना भरा होगा!! त्रिराशी लगाने जैसा विषय है। 'मोक्षमार्गको प्राप्त हुए हैं - इसमें कोई संदेहको अवकाश नहीं है' - चौबीस वें वर्षमें ऐसे पत्र लिखे हैं। हमारी आत्मा अनुभवसे इसकी साक्षी देता है, हमारी आत्मा ही भीतरमें से यकीनन इसकी पुष्टि करती है। - ऐसा करके कितनी निःशंकतापूर्वक मोक्षमार्गको स्वयं प्राप्त हुए हैं, अनुभव हुआ है इसकी बात लिखी है!!

(प्रवचनांश... 'बहिनश्रीके वचनामृत' बोल -११८, दि. १९-०५-१९८७, प्रवचन क्र.-९२, 'अध्यात्मसुधा' (गुजराती) भाग-३ पन्ना क्र.-५२४,५२५)

पुरुषार्थका अवरोधक – शल्य!!



पुरुषार्थ नहीं उठनेके पीछे अनेक प्रतिबंधक कारण हैं। जिसमें चार प्रकारके प्रतिबंध हैं। समाज प्रतिबंध, कुटुंब प्रतिबंध, शरीर प्रतिबंध, संकल्प-विकल्प प्रतिबंध – ये मुख्य प्रतिबंधक कारण हैं। इसके अलावा भी एक न समझे ऐसा और न पकड़में आनेवाला एक कारण है – वह शल्य है। शल्य क्या होता है? कि भूतकालमें और वर्तमानमें भी किसी जीवके प्रति एक या अनेक जीवोंके लिये अभिप्राय बना रखा होता है। जो कि पर्यायदृष्टिकी पक़ड़ है। हमें जो द्रव्यदृष्टिको अपनाना है, जो द्रव्यदृष्टि प्रकट करनी है इससे विरुद्ध हम पकड़ करके बैठे हैं। पहले वहाँसे मुक्त होना पड़ेगा। किसीके भी दोष दिखे हों या किसीने अनुचित आचरण किया हो, खुदके साथ किया हो, खुदको अन्याय किया हो, अपनेसे विरुद्ध वर्तन किया हो, पूर्वमें किया हो या अभी करता हो तो ऐसे किसी भी व्यक्तिके लिये अभिप्राय बनाये रखना यह पुरुषार्थ नहीं उत्पन्न होनेका, संवेग नहीं आनेके अनेकों कारणोंमें से एक कारण ऐसा है कि जिस कारणको प्राय: जीव पकड़ नहीं पाता है।

यहाँ क्या है कि जो अभिप्राय बन चुका है वह किसी न किसी कारणसे बना है। उसमें भले ही चारित्रमोह हो, क्योंकि वह तो स्थूल है इसलिये वही होता है। परंतु ज्ञानमें जो अभिप्राय बनाया है सो तो एक सर्वांगरूपसे बनाया है कि, 'यह व्यक्ति ऐसा ही है', 'यह तो ऐसा ही है', 'यह तो ऐसी ही है।' इसमें तो कोई भेद नहीं पड़ता। उसमें तो सर्वांगरूपसे योग्यता संबंधित अभिप्राय बना लिया है। हालाँकि पर्याय तो समय समयकी ही है। वैसी योग्यता उसकी चालू रह भी सकती है और चालू नहीं भी रह सकती इसके लिये वह जीवका परिणमन स्वतंत्र है। हमारे अभिप्रायके साथ उस जीवकी योग्यता कोई प्रतिबद्ध नहीं है। हाँ, लेकिन हमारे अभिप्रायके साथ हमारी आत्मा जरूर जुड़ी हुई है। सामनेवाले जीवका परिणमन प्रतिबद्ध नहीं है परंतु हमारा आत्मा जरूर इसमें बंधता है। यह जो भावका बंधन है वह जीवको अपने पुरुषार्थको उठने नहीं देता है। ऐसा क्यों? क्योंकि वह पुरुषार्थकी गति द्रव्यदृष्टिकी ओर जानेवाली है। इसकी तैयारी करनी है और इसकी तैयारीमें ये सब पकड़ छूट जानी चाहिये। हरएक प्रकारके आग्रह छूट जाने चाहिये। 'नांगळा' – सारी जकड़ें ढीली हो ही जानी चाहिये। 'पूज्य बहिनश्री'के ये खास शब्द हैं। जकड़ नाम 'नांगळा'। सारी जकड़ें ढ़ीली हो जानी चाहिये। कोई आग्रह नहीं। क्योंकि ज्ञानदशामें तो परेच्छानुचारी होना है तो अभी से ही परेच्छानुचारी होनेकी practice करें। बाह्यप्रसंगोंमें परेच्छानुचारी! सत्संगमें व आत्मकल्याण (यानी कि इससे)

विरुद्ध दिशामें नहीं। सिर्फ खुदको पुरुषार्थ करना बाकी रहता है।

मुमुक्षु :– जागृति विशेष हो तो ही...

पूज्य भाईश्री :– नहीं फिर तो क्या है, जब यह बात समझने मिल रही है तब जाँच कर लेनेका। क्योंकि इसमें गिने–चुने जीव होते हैं। हमारे परिचयमें तो कुछ लोग ही आये होते हैं। कुछलोग ही ऐसे होते हैं। इसमेंसे हमें देख लेना है कि मुझे किसका विकल्प रहता है? किसका विकल्प आता है? क्योंकि उसकी हमें परिणति बन चुकी होती है। जिसका शल्य उसकी परिणति होती है। परिणति बन चुकी होनेसे कभी–कभी वह परिणति विकल्पके द्वारा व्यक्त होती रहती है। वहाँसे पकड़में आती है। कि, इसका विकल्प मुझे आता रहता है। इस व्यक्तिका विकल्प मुझे आता है क्यों? मुझे क्या लेना–देना है?

'भैंसके सींग भैंसको ही भारी'–कभी कोई इस प्रकार व्यर्थ चिंता करता है? रास्ते परसे एक भैंस गुज़र रही थी। उसके सींग बहुत बड़े–बड़े थे। यह देखकर कोई चिंता करने लगा कि, अरेरे..! बेचारी भैंसको भार नहीं लगता होगा? इतने बड़े–बड़े सींग लेकर घूम रही है तो बिचारीको भार नहीं लगता होगा? लेकिन वहाँ भैंसके सींग भैंसको भारी। उस जीवको तो इसमें खूबसूरती लगती हो! हमलोग जैसे बाल बनानेमें स्टाईल करते हैं न! दूसरेको कैसा अच्छा लगे चाहे बुरा लगे सो तो ठीक है किन्तु खुदको जब पसंद होता है तभी तो खुद ऐसी style वगैरह करता है?

इसप्रकार बेवजह जीव शल्यको पकड़ कर बैठ जाता है। जो कि असरलता भी है। परमार्थदृष्टिसे आत्मपुरुषार्थका बाधक असरलता नामका अवगुण है। सरलतामें सब छोड़ देता है। सरलतावाला जीव सब छोड़ देता है। अभी इस क्षण प्रसंग बना और दूसरे मिनटमें मानो कुछ नहीं। गया सो गया! एक क्षण जितना उदय होता है। उदय पूरा हुआ कि बात पूरी। हम भीतरमें स्वतंत्ररूपसे परिणमन करें। सामनेवाला स्वतंत्र परिणमन करेगा (क्योंकि) हमें तो मुक्त होना है न? यह तो खुद कहाँ–कहाँ बँधता है यह विचार करना है।

मुमुक्षु :– परिवारका सदस्य हो, दूसरा कोई हो या मुमुक्षु हो...

पूज्य भाईश्री :– हाँ, सब जगह देख लो। क्योंकि सभी को द्रव्यदृष्टिसे देखना है। इसमें फिर कौन नहीं आता? द्रव्यदृष्टिसे देखनेमें कौनसा जीव नहीं आता? सम्यक्दृष्टि सो द्रव्यदृष्टि, द्रव्यदृष्टि सो सम्यक्दृष्टि। तो ऐसी द्रव्यदृष्टिमें कौनसा जीव द्रव्यके रूपमें नहीं देखना है? कोई अपवादरूपसे बाकी रहता है क्या? अभव्य जीव भी नहीं रहता फिर कहाँ सवाल है। अभव्य जीव भी नहीं रहता। ऐसी विशाल दृष्टि है! ऐसी उदार दृष्टि है!

मुमुक्षु :– भाईश्री! देव–गुरु–शास्त्रका कोई विरोध करता है तो उनका विकल्प आता है तो..?

पूज्य भाईश्री :– उनका विकल्प आये तो उनकी वृत्तिका विकल्प आये, उनके आत्माका नहीं

और वह जीव भी कभी भी सलट सकता है तो हमारे अभिप्रायमें भी ऐसा होना चाहिये। हमारे साथ एक प्रसंग बना था। एक जीव 'पूज्य बहिनश्री'के बहुत विरोधमें था। कड़े विरोधमें। समझे? तो तब किसीने हमको पूछा कि आपको उस जीवके प्रति कैसा भाव आता है? उस ज़मानें मे क्या था कि हम 'बहिनश्री'के आगे ढाल बनकर खड़े हो गये थे कि, अगर 'बहिनश्री'के प्रति किसीने अनुचित कुछ भी किया तो हम बरदास्त नहीं करेंगे-इसतरह। ऐसे वक्तमें मुझे पूछा गया कि आपको (उस विरोधी) के लिये कैसे भाव रहते हैं? हम क्या बोले मालूम है? जीव अभी उलटा पड़ा है, (किन्तु) सलट सकता है और कभी भी सलटेगा तो हम उसको माथे पर लेकर फिरेंगे। उसको ही माथे लेकर फिरेंगे। क्योंकि उसकी वृत्ति पलट गई। यानी कि उसकी वृत्तिका निषेध है। अगर दोषित वृत्तिका निषेध नहीं आता है तो अनुमोदन हो जायेगा। वह तो करने लायक है ही नहीं। और जो निषेध करते हैं उसका मतलब यह नहीं है कि इसकी पूरी आत्मा ऐसी खराब हो गई है। वह एक समयकी उसकी भूल है। वह मर्यादित बात है, उपेक्षित बात है।

मुमुक्षु :- व्यक्तिको अगर लेते हैं तो वह शल्यमें जाता है।

पूज्य भाईश्री :- हाँ, तो शल्यमें जाता है। क्योंकि व्यक्तितो ध्रुव हो गया न? आत्मा तो ध्रुव हो गया और परिणाम तो अध्रुव हैं। तो हमारे ज्ञानमें, हमारे अभिप्रायमें वह बात खुल्ली है कि कोई भी जीव कभी भी सलट सकता है। वह पलट जाता है तो बहुत अच्छी बात है। इनके लिये अच्छी बात है।

वह 'सोगानीजी'के ३३ नंबरके पत्रमें एक बहुत अच्छी बात आयी कि, ज्ञानी, अज्ञानीको कैसे देखते हैं? ऐसी भूल तो अज्ञानी लोग करते हैं। (ज्ञानी) उसे कैसे देखते हैं? कि वह अपने निज परमस्वरूप परमात्माको भूला हुआ है। इसलिये उसके परिणाम इधर-उधर, आड़े-टेढ़े हो जाते हैं। इसका ज्ञानीको ज्ञान रहता है। क्या? ज्ञानीको इसका ज्ञान रहता है। तो इसमें द्रव्य-पर्यायका युगपत् ज्ञान हो गया। प्रमाण ज्ञान हो गया। ऐसे।

मुमुक्षु :- भूला हुआ भगवान है।

पूज्य भाईश्री :- हाँ, वह तो जो जीव 'गुरुदेवश्री' (कानजीस्वामी) को गालियाँ देते थे उनके लिये 'गुरुदेव' कहते थे। 'गुरुदेवश्री'का विरोध काफ़ी लोग करते थे। और इतिहास देखा जाये तो ऐसे महापुरुष नहीं हुए कि जिनका किसीने विरोध किया ही न हो। 'आदिनाथ भगवान'का विरोध 'महावीरस्वामी'के जीवने किया था। देखिये! परिणामोंकी कैसी विचित्रता है, एक आदि तीर्थंकर हैं और एक अंतिम तीर्थंकर हैं। फिर भी एक ज़मानेमें विरोधमें खड़े हैं। 'आदिनाथ भगवान'के उदय कालमें तीर्थंकर प्रकृतिके उदयकालमें कि जब पुण्य प्रकृति चरमसीमा पर थी तब उन्हें ये गालियाँ देते थे। और वह भी इनके पुत्रके पुत्र होकर। वे उनके पौत्र थे उस वक्त। मेरे दादाको मैं पहचानूँगा कि आप पहचानेंगे? जब घरका आदमी कहता है तब लोगोंको अधिक विश्वास आता है। विरोधियोंको खास करके, सबको नहीं। इसलिये इसमें तो कोई आश्चर्यकी बात ही नहीं है। ऐसा होता है।

'गुरुदेवश्री' उनके लिये कहते थे कि वह तो भूला हुआ भगवान है। वे लोग अखबार भेजते थे। जिस अखबारमें ऐसा लिखा हो वे लोग अखबार 'गुरुदेवश्री'को पोस्ट करते थे। और ऑफिसमें सूचना दी गई थी कि ऐसा कोई भी अखबार आये तो उसे 'गुरुदेवश्री'के पास पहुँचाना है। और 'गुरुदेवश्री' उसे पढ़ते थे-और पढ़कर सुनाते भी थे कि देखो! ये लोग ऐसा लिखते हैं। वह बेचारा भूला हुआ भगवान है। अरे..! भगवान! ऐसा ही कहते थे। अरे..! भगवान यह तुझे क्या सूझता है? उसे भगवानकी नज़रसे ही देखते थे! इतनी उदारता और इतनी विशालता होती है।

मुमुक्षु :- मुमुक्षुको तो पर्यायदृष्टि खत्म नहीं हुई है...

पूज्य भाईश्री :- खत्म तो नहीं हुई है किंतु खत्म करनेका प्रयास तो मुमुक्षुका होना चाहिये न? मुमुक्षु है वह प्रयत्नदशाका नाम है। जो मुमुक्षु प्रयत्न नहीं करता है वह मुमुक्षु है ही नहीं। मुमुक्षुका दूसरा नाम प्रयत्नदशा और ज्ञानीका दूसरा नाम प्रयत्न सफल हो चुका ऐसी दशा। मुमुक्षु प्रयत्न करते-करते सफल हुआ वह ज्ञानदशा। प्रयत्नदशा तो होनी ही चाहिये न!

मुमुक्षु :- भाईश्री! प्रयास कैसे करना?

पूज्य भाईश्री :- बस! यहाँ कहा न ऐसे। कि मैं क्यों दूसरेकी उपाधि करता हूँ? वह जीव पलट गया तो? मेरा शल्य तो ज्यों का त्यों रह जायेगा। मुझे क्या लेना-देना है? किसीकी योग्यताके साथ मेरी आत्माको क्या संबंध है? इस जगतमें हीन योग्यताके असंख्य स्तर हैं। कितने? असंख्य प्रकार हैं। छोटा-बड़ा, कम-बेसी, हीनाधिकपना असंख्य प्रकारके हैं। मुझे किसके सामने देखना है? कितनोंके सामने मैं देखूँ? क्या संबंध है मेरा? और मुझे कहाँ इतनी फुर्सत है? खुद मेरेमें इतनी अयोग्यताएँ है! मैं भी उनमें से ही एक हूँ। मैं भी कोई सर्वांग संपूर्ण तो नहीं हो गया। मैं भी उनमें से ही एक हूँ। तो मुझे अपनेमें सुधार करनेके कार्यसे फुर्सत मिले तब तो दूसरोंकी पंचायतमें जाउँ? मुझे क्या लेना-देना है? आँख ही बंद कर लेनी है (इतना दुर्लक्ष करना है) शटर ही गिरा देना है। किसीका मुझे क्या काम है? मुझे किसीका क्या काम है? मैं तो अपना हित करने यहाँ आया हूँ। और मैं अपने हित करनेमें ध्यान दूँ।

(प्रवचनांश... स्वानुभूतिदर्शन प्र. क्र.-४१५, दि.-२९-११-१९९८, प्रश्न क्र.-३५७)

आभार

'स्वानुभूतिप्रकाश' (नवम्बर-२०२६, हिन्दी एवं गुजराती) के इस अंककी समर्पणराशि
श्रीमती मनिषा हेमंतभाई शाह, मुंबई एवं
श्रीमती केतकी निरवभाई वोरा, भावनगर
की ओरसे ट्रस्टको साभार प्राप्त हुई है।
अतएव यह पाठकोंको आत्मकल्याण हेतु भेजा जा रहा है।



'दृष्टिका परिणमन और दृष्टिका विषय'

– 'द्रव्यदृष्टि प्रकाश' – पूज्य निहालचंद्रजी सोगानी

'वर्तमानमें ही कृतकृत्य हूँ' – ऐसी दृष्टि अपनी वस्तुमें हुयी, तो करुँ...करुँ – ऐसी कर्तृत्व बुद्धि छूट गयी.... बस! यही मुक्ति है। १९१.

*

''शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन स्वयं ज्योति सुख धाम'' – कैसी सुंदर बात श्रीमद्जीने की है! एक पंक्तिमें सब बात आगई। बस, भाई! तू इतना ही विचार (ज्ञान) **कर। १९७.**

*

'मैं अधिक हूँ' – यही स्वयंका महात्म्य भाव है। 'मैं' कोई भी भावमें – विकल्पमें खिसकता नहीं, तणीजता (खिंचीजता) ही नहीं, वैसा का वैसा और वहीं का वहीं हर समय रहता हूँ; विकल्पके साथ, परिणामके साथ, खिसकता ही नहीं हूँ। क्या दर्पणका दल क्षणिक आकारमें खिसकता है (आता है)? – वैसा का वैसा ही रहता है। ऐसे ही, 'मैं' भी सदा वैसा का वैसा रहता हूँ। १९९.

*

अरे भाई! 'तू' एक समयकी पर्यायमें आ नहीं जाता है। 'तू' तो अनंती पर्यायोंका पिण्ड है; यदि 'तू' एक पर्यायमें आ गया तो अन्य सभी पर्यायें विधवा हो जायेंगी। २०३.

*

'मैं' ऐसा अपरिणामी (ध्रुव) पदार्थ हूँ कि तीनों लोकोंके सभी पदार्थ इकट्ठे होकर भी मुझे हिला-डुला नहीं सकते। २०६.

*

साधक-बाधक – ये सब तो पर्यायका ज्ञान करनेके लिए हैं। सबलाईका (अनंत वीर्यके पिण्डरूपका) **चश्मा लगाए बिना, नबलाईका भी (यथार्थ) ज्ञान नहीं होता है। साधकपना – बाधकपना तो पर्यायकी बात है, 'हमें' तो साधकपने-बाधकपनेकी भी दरकार नहीं है, क्योंकि बाधकपना 'मुझे'** (त्रिकालीको) **नुकसान नहीं पहुँचा सकता और साधकपना लाभ नहीं कर सकता; तो फिर इनका विचार क्यों? २०७.**

*



महावीरके बोधका पात्र कौन?

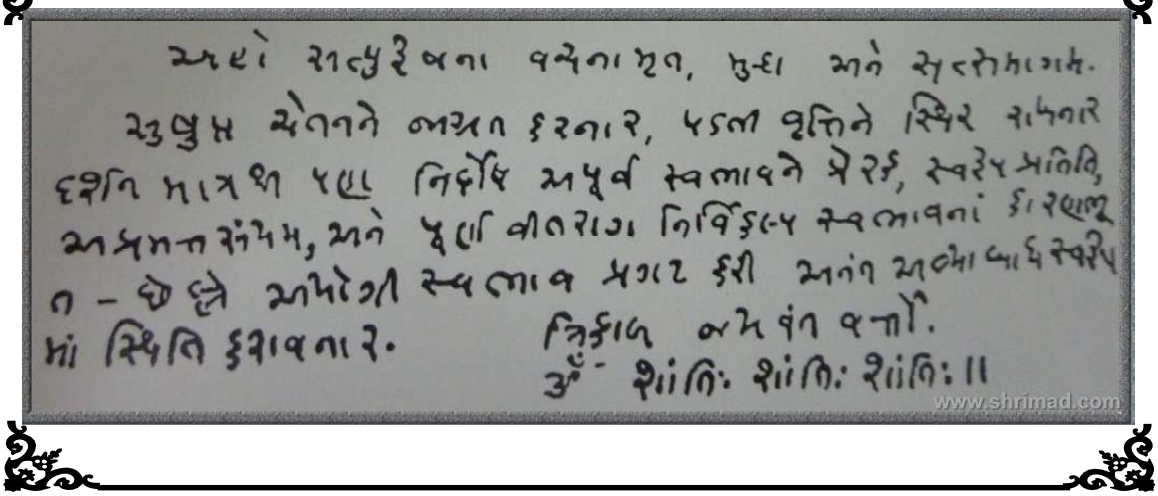
बंबई, फागुन सुदी ६, १९४६

१. सत्पुरुषके चरणोंका इच्छुक,
२. सदैव सूक्ष्म बोधका अभिलाषी,
३. गुणपर प्रशस्त भाव रखनेवाला,
४. ब्रह्मव्रतमें प्रीतिमान,
५. जब स्वदोष देखे तब उसे दूर करनेका उपयोग रखनेवाला
६. एक पल भी उपयोगपूर्वक बितानेवाला,
७. एकांतवासकी प्रशंसा करनेवाला,
८. तीर्थादि प्रवासका उमंगी,
९. आहार, विहार और निहारका नियम रखनेवाला
१०. अपनी गुरुताको छिपानेवाला,

ऐसा कोई भी पुरुष महावीरके बोधका पात्र है,सम्यग्दशाका पात्र है। पहले जैसा एक भी नहीं है।

('श्रीमद् राजचंद्र' ग्रंथ पत्रांक–१०५)

परम कृपालुदेवके मंगल हस्ताक्षर





पूज्य बहिनश्री की तत्त्वचर्चा 'स्वानुभूतिदर्शन'

प्रश्न :– श्रीमद् राजचंद्रजीने कहा है कि 'जिसे ज्ञानीके प्रति परमात्मबुद्धि आती है उसे सर्व मुमुक्षुओंके प्रति दासत्वभाव आता है।' तो वहाँ वे क्या कहना चाहते हैं?

समाधान :– सत्पुरुष जो कि सर्वोत्कृष्ट मार्ग बतला रहे हैं और साधना कर रहे हैं उनके प्रति मुमुक्षुको परमेश्वरबुद्धि आती है। अर्थात् 'वे ही मुझे सर्वस्व हैं' ऐसा वह मानता है जिससे उसे अन्य मुमुक्षु जीवोंके प्रति दासत्वपना अर्थात् गुणग्राहीदृष्टि हो जाती है। वह किसीके दोष नहीं देखता, किंतु उसे सबका दासत्व है अर्थात् 'मैं किसीसे ऊँचा हूँ' ऐसी द्रष्टि नहीं है, परंतु नम्रताका भाव आ जाता है।

आत्मार्थिताका लक्षण है कि मैं किसीसे ऊँचा हूँ, ऐसा विचार छूट जाय और सबका दासत्व आ जाय। उसे इतनी अधिक नम्रता आ जाती है कि अपना अहंपना और कठोरता छूट जाती है। किंतु उसे परीक्षा बुद्धि होती है। जहाँ सच्चे देव–शास्त्र–गुरु हों वहीं उसकी अर्पणता होती है; परंतु जो सत्य नहीं समझते हों, जिनकी विपरीत बुद्धि तथा मिथ्या आग्रह हों उनके प्रति दासत्व नहीं होता; तथापि स्वयंको कहीं अभिमान नहीं होता और न कहीं अभिमानपूर्वक वर्तता है, ऐसा दासत्व होता है। वह ऐसा मान नहीं रखता कि मुझमें कितनी विशेषता है अर्थात् मैं बड़ा हूँ, ऐसा उसका मान छूट जाता है; जिससे अपनेको हानि हो वैसा अहंपना छूट जाता है। कोई मिथ्या आग्रही हों अथवा कुदेव–कुगुरु हों उन सबको यथावत् जानता है, परंतु स्वयं अहंभाव नहीं रखता। उसे सर्वत्र विवेक वर्तता है, परंतु उसका अर्थ ऐसा नहीं है कि वह सब जगह नमस्कार करता है। फिर भी उसको अहंभाव छूट जाता है। मुझमें यह गुण तो है न? – ऐसा अहंभाव उसको नहीं होता, किंतु मुझे अभी बहुत करना बाकी है ऐसी विनम्रता होती है। द्रव्य अपेक्षासे सिद्ध भगवान् समान हूँ, परंतु पर्यायमें पामर हूँ, ऐसी विनम्रता अंतरमें आ जाती है। – यह दासत्वका अर्थ है। मैं पर्यायमें पामर हूँ, मेरी पर्यायमें बहुत अपूर्णता है, मुझे बहुत करना है ऐसी नम्रता होती है; परंतु मैंने यह कर लिया है और मुझमें यह है ऐसा अहंभाव नहीं होता।

दासत्वका ऐसा अर्थ नहीं है कि सबका दास हो जाना और सबको नमस्कार करना। दूसरोंके दोष देखनेकी अपेक्षा अपने दोष देखना कि मैं पर्यायमें पामर हूँ; वह आत्मार्थीका लक्षण है। दूसरोंको दोषबुद्धिसे देखनेकी अपेक्षा तू स्वयं अपनेमें कहाँ अटका हुआ है और तुझमें क्या त्रुटि है उसे तू देख। दूसरोंके दोष देखनेमें नहीं अटकना। 'जगत्को अच्छा दिखानेका प्रयत्न किया, परंतु तू स्वयं अच्छा नहीं हुआ' ऐसा श्रीमद्जीने कहा है। जगत्को अच्छा दिखानेका प्रयत्न किया, परंतु तू स्वयं अंतरसे अच्छा

हुआ है या नहीं? – वह तुझे अंतरमें देखना है। तुझे स्वयं अंतरमें गुण प्रगट करने हैं, अंतरंग शुद्धि करनी है। द्रव्यको पहचानकर अंतरसे जिज्ञासा एवम् लगन लगाकर आत्माकी ओर तेरा झुकाव कितना होता है उसकी – उपादानकी तैयारी करनी है। श्रीमद्जीके इस वाक्यमें गूढता भरी है। गुरुदेवके प्रतापसे स्पष्टता हुई है। गुरुदेवने समयसारादि शास्त्रोंके तथा आत्माके-वस्तुस्वरूपके रहस्य खोले हैं जिससे सब कुछ स्पष्ट हो गया है। ६५२.

*

वीर निर्वाणकल्याणक दिन पर प्रवाहित पूज्य बहिनश्रीके हृदयोद्गार!!

श्री महावीर तीर्थाधिनाथ आत्माके पूर्ण अलौकिक आनन्दमें और केवलज्ञानमें परिणमते थे। आज उनने सिद्धदशा प्राप्त की। चैतन्यशरीरी भगवान आज पूर्ण अकम्प होकर अयोगीपदको प्राप्त हुए, चैतन्यपिण्ड पृथक् हो गया, स्वयं पूर्ण चिद्रूप होकर चैतन्यबिंबरूपसे सिद्धालयमें बिराज गये; अब सदा समाधिसुख-आदि अनन्तगुणोंमें परिणमन करते रहेंगे।

('बहिनश्रीके वचनामृत'मे से साभार उद्धुत)

करुणासागर 'पूज्य भाईश्री शशीभाई' की ९४वीं जन्म-जयंती महोत्सव पर धार्मिक कार्यक्रम

मुमुक्षुजीवों के परम तारणहार पूज्य भाईश्री शशीभाई की आगामी ९४वीं जन्म जयंतीका महोत्सव मार्गशीर्ष सुदी-४, दि. १३-१२-२०२६ से मार्गशीर्ष सुदी-८, दि. १७-१२-२०२६ पर्यंत अत्यंत आनंदोल्लासपूर्वक मनाया जायेगा। इस प्रसंग पर मंडल विधान पूजन, पूज्य भाईश्री के ऑडियो एवं विडीयो सी.डी. प्रवचन, पूज्य गुरुदेवश्री के विडीयो सी.डी. प्रवचन, पूज्य बहिनश्री चंपाबहिन की तत्त्वचर्चा, भक्ति, सत्संग, सांस्कृतिक कार्यक्रम रहेंगे और दि. १६-१२-२०२६ के दिन जिनेन्द्र रथयात्रा का कार्यक्रम रहेगा। इस प्रसंग पर आनेवाले मुमुक्षु निम्नलिखित पते पर पहुँचनेकी तारीख लिखें, जिससे उनकी आवास एवं भोजन की समुचित व्यवस्था हो सके।

संपर्क: श्री राजेन्द्र जैन, मो. ९८२५१५५०६६

कार्यक्रम स्थल :- श्री शशीप्रभु साधना-स्मृति मंदिर, प्लोट नं. १९४२-बी, शशीप्रभु चौक, रूपाणी सर्कल के पास, भावनगर-३६४००१

(पृष्ठ संख्या १९ से आगे...)

जीवोंके आत्महितमें – कल्याणमें निमित्तभूत होता है। जैसे 'गौतम' गणधरको तो उसी दिन केवलज्ञानकी प्राप्ति हुई है।

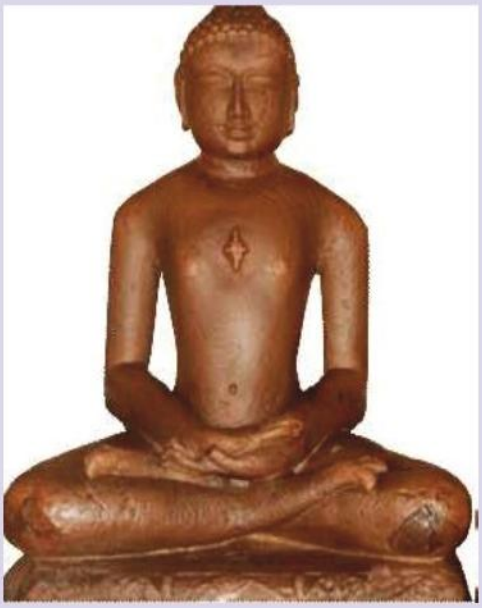
उनकी वाणीमें से तत्पश्चात् अनेक आचार्य भगवंतोंने सत्शास्त्रोंकी रचना की है। इन्हीं शास्त्रोंके रहस्योंको खोजकर 'गुरुदेवश्री'ने हम सबको प्रदान किया है। वही वाणी है जो 'गुरुदेवश्री'ने प्रसिद्ध की है। 'सीमंधर भगवान'की वाणी कहो, चाहे 'महावीरस्वामी भगवान'की वाणी कहो – सब एक ही है। कोई अलग-अलग बातें उसमें नहीं होती। एक सरीखा आत्महितका रहस्य इसमें प्रकाशित होता है। वह वाणी तो अनन्त रहस्य समेत आती है। वैसे ही 'गुरुदेवश्री'की वाणी भी सातिशय थी और उसमें भी अतिशयरूपसे – सअतिशय तत्त्वका प्रकाश हुआ है और अनेक जीवोंको आत्महितमें वह कल्याणकारी हुई है और होगी भी। ऐसा यह आजका महान दिन है! आज पर्वका दिन! निर्वाणकल्याणकका दिन! उत्सवके रूपमें मनाया जाता है।

उस जमानेमें तो जैनधर्मका वैभव बहुत था। अन्यमति कम थे। जब भगवान विराजमान होते हैं तब तीर्थप्रवृत्ति इतने विशाल पैमानेमें होती है कि दूसरे अन्यमतवाले जीव कम होते हैं। अतः वे लोग भी साथ-साथ जुड़ते हैं। सामान्य तौर पर ऊँचे पुण्यवालोंके साथ नीचे पुण्यवाले जुड़ जाते हैं। क्योंकि उनका भी कोई मतलब होता है इसलिये। अतः सब लोग इन दिनों, स्वयं इन्द्रोंने भी आकर दिये जलाये! निर्वाणकल्याणक दिन पर दीपमालाएँ प्रगटाई इसलिये दीपावली कहते हैं। मूल शब्द तो 'दीपावली' है। आवली अर्थात् समूह। इतने सारे दियोंका समूह था कि, इस दिनको 'दीपावली महोत्सव' कहा गया। इसमें से अपभ्रंश होकर 'दिवाली' हो गया। और भीतरमें आत्माके असंख्य प्रदेशमें ज्ञानके दिये प्रकट होते हैं वह सम्यक्त्वरूप दीपावली है! स्वसंवेदनरूप दीपावली है!! 'गौतम गणधर भगवान'ने केवलज्ञानरूप दीपावली मनायी! दूसरे अनेक जीवोंने सम्यक्त्वादि प्राप्त करके असंख्य प्रदेशोंमें ज्ञानकी दीपावली मनायी। जो कि वास्तवमें दीपावली है। इस तरह सच्ची दीपावली तो वह है। ये जो पटाखे फोड़ते हैं वह दीपावली नहीं है। वह तो हिंसाका कारण है। अनेक जीव वातावरणमें होते हैं जो इसकी गंधमात्रसे मर जाते हैं। फिर आम लोग दीपावलीके साथ इसे जोड़ देते हैं। वैसे तो देवोंने इन्द्रोंने आकर अनेक दिये उस अवसर पर प्रज्वलित किये थे और साधकोंने अंतरमें ज्ञान-दिये प्रज्वलित किये थे!! इसलिये इस अवसर को दीपावलीके उत्सवके रूपमें आज २५०० साल पश्चात् भी मनाया जाता है। इसतरह आजका दिन महान है।

– पूज्य भाईश्री शशीभाई

(प्रवचनांश... 'बहिनश्रीके वचनामृत' बोल –१, दि. ३-११-१९८६, प्रवचन क्र.-१, 'अध्यात्मसुधा' (गुजराती) भाग-१ पन्ना क्र.-१ से ३)

शासननायक अंतिम तीर्थाधिनाथ श्री महावीरप्रभुके निर्वाणकल्याणकके पावन प्रसंग पर उनके चरणोंमें वंदन करके, अनंत जन्म-मरणकी श्रृंखलाका व्यवच्छेद करनेकी मंगलमय भावनाके दीप प्रज्वलित करके स्वानुभूतिप्रकाश परिवारके सर्व पाठकवर्गको दीपावलीकी शुभकामना !!



आज वीर निर्वाणकल्याणक दिन है। आजका यह दिन भूतनैगमनयसे कहा जाता है। वैसे तो भगवान २५००से अधिक साल पहले सिद्धालयमें पधारे हैं। 'पावापुरीजी'से सिद्धालयमें गमन किया वह आज रोज़ प्रातःकालमें हुआ। २५०० साल पश्चात् या कितने ही कालके पश्चात् आज रोज़ ऐसा भूतनैगमनयसे कहा जाता है। आज रोज वह दिन है ऐसा कहते हैं। भूतकालमें हुई घटनाको कथन द्वारा वर्तमानवत् कहना – यह भूतनैगमनयका कथन हुआ।

इसीतरह भावी घटनाको वर्तमानवत् कहना – जैसे कि 'गुरुदेवश्री'के लिये हमलोग कहते हैं कि, 'गुरुदेवश्री' 'सूर्यकीर्तिनाथ' भगवान हैं। चौबीस सागरके पश्चात् 'सूर्यकीर्ति' भगवान तो होंगे। इसे वर्तमानमें 'हैं' ऐसा करके स्थापित करते हैं यह भाविनैगमनयका विषय है।

(महावीर भगवानको) केवलज्ञान तो (निर्वाणके पूर्व) तीस वर्ष पहले हुआ था। तीस साल तक उन्होंने समवसरणमें दिव्यध्वनि प्रकाशित की और आजके दिन सिद्धालयमें गमन किया तब इन्द्रादि देवोंने आगमन किया और उत्सव मनाया। आज ही के दिन भगवान सिद्धालय पधारे और आज ही 'गौतम गणधर स्वामी' केवलज्ञानको प्राप्त हुए। श्वेतांबरमें थोड़ी गडबडीवाली बात आती है कि, गणधर भगवान 'गौतमस्वामी'को बहुत दुःख हुआ रोने लगे। चौधार आँसूसे रुदन किया था! हालाँकि मुनिराजको ऐसे लौकिक परिणाम नहीं होते। अलबत्ता वर्तमानमें तीर्थंकर भगवानका वियोग हुआ यह पता चलता है फिर भी वह प्रसंग कल्याणका प्रसंग है। दूसरे जीवोंको अपने कल्याणमें निमित्तभूत होनेसे उसे 'कल्याणक' कहा जाता है। 'कल्याणक'का अर्थ है – कल्याण करनेवाला! जो कल्याण करे सो 'कल्याणक' कहलाये। कल्याणमें निमित्तभूत हो उसे 'कल्याणक' कहे। यह प्रसंग भी अन्य

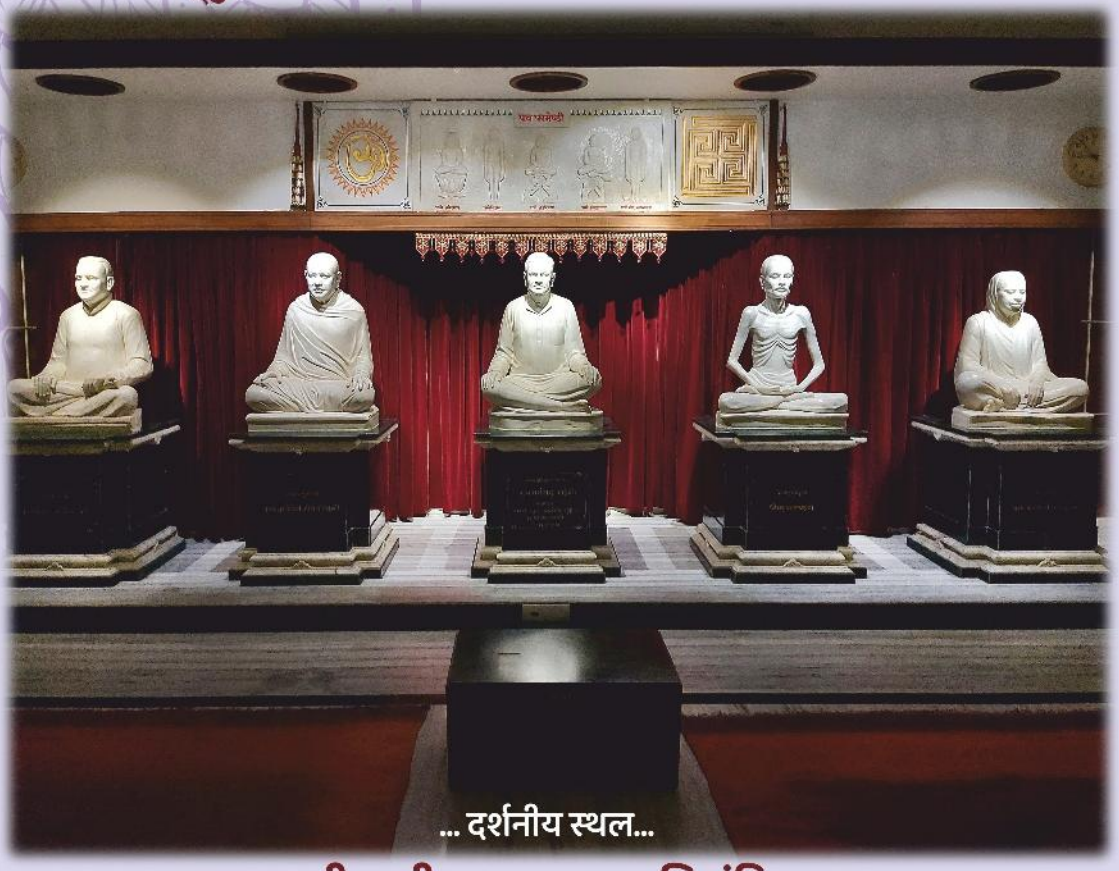


ભગવાન મહાવીર ચરણકમળ

(अनुसंधान पृष्ठ संख्या १८ पर..)

REGISTERED NO. : BVHO - 253 / 2024-2026
RENEWED UPTO : 31/12/2026
R.N.I. NO. : 70640/97
Title Code : GUJHIN00241
Published : 10th of Every month at BHAV.
Posted at 10th of Every month at BHAV. RMS
Total Page : 20

'सत्पुरुषों का योगबल जगत का कल्याण करे'



... दर्शनीय स्थल...

श्री शशीप्रभु साधना स्मृति मंदिर
भावनगर

स्वत्वाधिकारी श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट की ओर से मुद्रक तथा प्रकाशक श्री नीरव धर्मेन्द्र वोरा द्वारा अजय ऑफसेट, १२-सी, बंसीधर एस्टेट, बारडोलपुरा, अहमदाबाद - ३८० ०१६ से मुद्रित एवं १९४२ - बी, शशीप्रभु मार्ग, रूपाणी, भावनगर - ३६४ ००१ से प्रकाशित ।

संपादक : श्री नीरव धर्मेन्द्र वोरा - 98250 52913

Printed Edition :
Visit us at : http://www.satshrut.org

If undelivered please return to ...

Shri Shashiprabhu Sadhana Smruti Mandir
1942/B, Shashiprabhu Marg, Rupani,
Bhavnagar - 364 001

mayur 9374825041